सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ १०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं परापूजास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

* * * *

७७—चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥ १॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥ (ध्रुवपदम्)
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः। भज० ॥ २॥

है, मेरे चरणोंका चलना आपकी प्रदक्षिणा है और मैं जो कुछ भी बोलता हूँ वह सब आपके स्तोत्र हैं, अधिक क्या? मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है॥ १०॥

* * * *

दिन और रात, सायंकाल और प्रातःकाल, शिशिर और वसन्त पुनः-पुनः आते हैं; इसी प्रकार कालकी लीला होती रहती है और आयु बीत जाती है, किन्तु आशारूपी वायु छोड़ती ही नहीं; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे'* यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी॥ १॥ दिनमें आगे अग्नि और पीछे सूर्यसे शरीर तपाते हैं, रात्रिके समय जानुओंमें ठोड़ी दबाये पड़े रहते हैं, हाथमें ही भिक्षा माँग लाते हैं, वृक्षके

---

* व्याकरणमें 'डुकृञ् करणे' एक धातु है, इसे एक ब्राह्मणको वृद्ध होनेपर भी रटते देखकर श्रीशङ्कराचार्यजीने यह उपदेश किया।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्ता पृच्छति कोऽपि न गेहे । भज० ॥ ३ ॥
जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति लोको ह्युदरनिमित्तं बहुकृतशोकः । भज० ॥ ४ ॥
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिकापीता ।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् । भज० ॥ ५ ॥
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् । भज० ॥ ६ ॥

तले ही पड़े रहते हैं, फिर भी आशाका जाल जकड़े ही रहता है; अतः हे मूढ ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी ॥ २ ॥ अरे, जबतक तू धन कमानेमें लगा हुआ है तभीतक तेरा परिवार तुझसे प्रेम करता है, जब जराग्रस्त होगा तो घरमें कोई बात भी न पूछेगा; अतः हे मूढ ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ३ ॥ जटाजूटधारी होकर, मुण्डित होकर, लुञ्चितकेश होकर, काषायाम्बरधारी होकर, ऐसे नाना प्रकारके वेष धारण करके यह मनुष्य देखता हुआ भी नहीं देखता और पेटके लिये ही नाना प्रकारसे शोक किया करता है; अतः हे मूढ़ ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ४ ॥ जिसने भगवद्गीताको कुछ भी पढ़ा है, गङ्गाजलकी जिसने एक बूँद भी पी है, एक बार भी जिसने भगवान् कृष्णचन्द्रका अर्चन किया है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है ? अतः हे मूढ ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ५ ॥ अङ्ग गलित हो गये, सिरके बाल पक गये, मुखमें दाँत नहीं रहे, बूढ़ा हो गया, लाठी लेकर चलने लगा, फिर भी आशा पिण्ड नहीं छोड़ती; अरे मूढ ! निरन्तर गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ६ ॥

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः । भज० ॥ ७ ॥
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे । भज० ॥ ८ ॥
पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् । भज० ॥ ९ ॥
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः । भज० ॥ १० ॥

बालक तो खेल-कूदमें आसक्त रहता है, तरुण तो स्त्रीमें आसक्त है और वृद्ध भी नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें मग्न रहता है, परब्रह्ममें तो कोई संलग्न नहीं होता; अतः अरे मूढ ! तू सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ७ ॥ इस संसारमें पुनः-पुनः जन्म, पुनः-पुनः मरण और बारंबार माताके गर्भमें रहना पड़ता है, अतः हे मुरारे ! मैं आपकी शरण हूँ, इस दुस्तर और अपार संसारसे कृपया पार कीजिये; इस प्रकार अरे मूढ ! तू तो सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ८ ॥ रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन और वर्ष कितनी ही बार आये और गये तो भी लोग ईर्ष्या और आशाको नहीं छोड़ते, अतः अरे मूढ ! तू सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ९ ॥ अवस्था ढलनेपर काम-विकार कैसा ? जल सूखनेपर जलाशय क्या ? तथा धन नष्ट होनेपर परिवार ही क्या ? इसी प्रकार तत्त्वज्ञान होनेपर संसार ही कहाँ रह सकता है ? अतः हे मूढ ! सदा गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १० ॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज० ॥ ११ ॥
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्। भज० ॥ १२ ॥
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्। भज० ॥ १३ ॥
यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये। भज० ॥ १४ ॥
सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्। भज० ॥ १५ ॥

नारीके स्तनों और नाभिनिवेशमें मिथ्या माया और मोहका ही आवेश है, ये मांस और मेदके ही विकार हैं—ऐसा बार-बार मनमें विचार, हे मूढ ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह 'डुकृञ् करणे' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ११ ॥ स्वप्नवत् मिथ्या संसारकी आस्था छोड़कर 'तू कौन है, मैं कौन हूँ कहाँसे आया हूँ, मेरी माता कौन है और पिता कौन है ?'—इस प्रकार सबको असार समझ तथा हे मूढ ! निरन्तर गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १२ ॥ गीता और विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ करना चाहिये, भगवान् विष्णुके स्वरूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये, चित्तको संतजनोंके सङ्गमें लगाना चाहिये और दीनजनोंको धन दान करना चाहिये और हे मूढ ! नित्य गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १३ ॥ जबतक प्राण शरीरमें है तबतक ही लोग घरमें कुशल पूछते हैं, प्राण निकलनेपर शरीरका पतन हुआ कि फिर अपनी स्त्री भी उससे भय मानती है; अतः हे मूढ ! नित्य गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १४ ॥ पहले तो सुखसे स्त्री-सम्भोग किया जाता है, किन्तु पीछे शरीरमें रोग घर कर लेते हैं, यद्यपि संसारमें मरना अवश्य है तथापि लोग

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः ।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः । भज० ॥ १६ ॥
कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन । भज० ॥ १७ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

* * * *

७८—द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥ १ ॥

पापाचरणको नहीं छोड़ते; अतः हे मूढ ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १५ ॥ गलीमें पड़े चिथड़ोंकी कन्था बना ली, पुण्यापुण्यसे निराला मार्ग अवलम्बन कर लिया, 'न मैं हूँ, न तू है और न यह संसार है'—(ऐसा भी जान लिया), फिर भी किस लिये शोक किया जाता है ? अतः हे मूढ ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १६ ॥ चाहे गङ्गा-सागरको जाय, चाहे नाना व्रतोपवासोंका पालन अथवा दान करे तथापि बिना ज्ञानके इन सबसे सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती; अतः हे मूढ ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' (अथवा हा धन ! हा कुटुम्ब !! हा संसार!!!) यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १७ ॥

* * * *

हे मूढ ! धनसञ्चयकी लालसाको छोड़, सुबुद्धि धारण कर, मनसे तृष्णाहीन हो, अपने प्रारब्धानुसार तुझे जो कुछ वित्त मिल जाय, उसीसे चित्तको प्रसन्न रख और हे मूढमते ! निरन्तर गोविन्दको भज ॥ १ ॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ (ध्रुवपदम्)
अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः। भज० ॥ २ ॥
का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः। भज० ॥ ३ ॥
मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा। भज० ॥ ४ ॥
कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः। भज० ॥ ५ ॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः। भज० ॥ ६ ॥

अर्थको नित्य अनर्थरूप जान, उसमें सचमुच ही सुखका लेश भी नहीं है, अरे ! सभी जगह ऐसी नीति देखी है कि धनवान्‌को तो अपने पुत्रसे भी भय रहता है; इसलिये सदा गोविन्दको भज ॥ २ ॥ कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र ! अरे ! यह संसार बड़ा विचित्र है, भाई ! इसी तत्त्वका निरन्तर विचार कर कि, 'तू कौन है ? किसका है ? और कहाँसे आया है ?' और गोविन्दको भज ॥ ३ ॥ धन, जन और यौवनका गर्व मत कर, काल पलक मारते ही इन सबको नष्ट कर देता है, इस सम्पूर्ण मायामय प्रपञ्चको छोड़कर, ब्रह्मपदको जानकर उसीमें प्रवेश कर; और हे मूढ ! सदा ! गोविन्दको भज ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोहको त्यागकर अपने लिये विचार कर कि 'मैं कौन हूँ' जो मूढ़ आत्मज्ञान से रहित हैं, वे नरकमें पड़े हुए सन्तप्त होते रहते हैं; अतः सदा गोविन्दको भज ॥ ५ ॥ देवमन्दिर अथवा वृक्षतलका निवास, पृथ्वीकी ही शय्या, मृगचर्मका वस्त्र और सब प्रकारके परिग्रह और भोगोंका त्याग है, ऐसा वैराग्य किसको सुख नहीं पहुँचाता ? अतः सदा गोविन्दको भज ॥ ६ ॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्। भज०॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्। भज०॥ ८ ॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्। भज०॥ ९ ॥
नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्। भज०॥ १० ॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्। भज०॥ ११ ॥

यदि तू शीघ्र विष्णुत्वकी प्राप्तिका अभिलाषी है तो शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धुओंसे मेल अथवा अनमेलका प्रयत्न मत कर और सर्वत्र समभाव रख तथा निरन्तर गोविन्दको भज॥ ७॥ तुझमें, मुझमें और अन्यत्र भी सबमें एक ही वासुदेव हैं, इसलिये कोप करना व्यर्थ है, सबको सहन करनेवाला हो, आत्माको ही सबमें देख, भेदरूपी अज्ञानको सर्वत्र त्याग दे और सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ८॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और नित्यानित्य वस्तुका विवेकपूर्वक विचार कर, विधिपूर्वक भगवन्नामस्मरणके सहित ध्यान करनेका निश्चय कर; क्योंकि यही महान् निश्चय है और सदा गोविन्दका भजन कर॥ ९॥ कमलपत्रपर पड़ी हुई बूँद जैसे स्थिर नहीं होती है वैसा ही अति चञ्चल यह जीवन है; इसे खूब समझ ले, व्याधि और अभिमानसे ग्रस्त हुआ यह सारा संसार अति शोकाकुल है, अतः तू सदा गोविन्दका भजन कर॥ १०॥ रे पागल जीव! तू अठारह जगहकी चिन्ता क्यों कर रहा है, क्या तुम्हारा कोई नियन्ता नहीं है? जो तुम्हारे दोनों हाथ खूब कसके बाँधकर तुम्हें जन्म-मरणादि विकारोंसे रहित आत्मतत्त्वका बोध करा दे; अरे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ११॥

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्। भज० ॥ १२ ॥
द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्। भज० ॥ १३ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

* * * *

७९—गौरीशाष्टकम्

भज गौरीशं भज गौरीशं गौरीशं भज मन्दमते। (ध्रुवपदम्)
जलभवदुस्तरजलधिसुतरणं ध्येयं चित्ते शिवहरचरणम्।
अन्योपायं न हि न हि सत्यं गेयं शङ्कर शङ्कर नित्यम्। भज० ॥ १ ॥
दारापत्यं क्षेत्रं वित्तं देहं गेहं सर्वमनित्यम्।
इति परिभावय सर्वमसारं गर्भविकृत्या स्वप्नविचारम्। भज० ॥ २ ॥

गुरुदेवके चरणकमलोंका अनन्य भक्त होकर संसारसे शीघ्र ही मुक्त हो जा, इस प्रकार इन्द्रियोंके सहित मनका संयम करनेसे तू शीघ्र ही अपने हृदयस्थ देवको देखेगा; अतः निरन्तर गोविन्दका भजन कर ॥ १२ ॥ यह द्वादशपञ्जरिका-स्तोत्र शिष्योंके उपदेशके लिये कहा गया है, जिनके हृदयमें विवेक नहीं है, वे दीर्घकालतक नरकयातना भोगते हैं; अतः हे मूढमते ! तू निरन्तर गोविन्दका भजन कर ॥ १३ ॥

* * * *

हे मन्दबुद्धिवाले ! तू सदा गौरीश (शङ्करभगवान्) का भजन कर। संसाररूप दुस्तर सागरसे पार लगानेवाले, भगवान् शिवके ही चरणका ध्यान कर, संसारसे उद्धार पानेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है; यह सत्य जान; सदा शङ्करके नामका ही गान किया कर। हे मन्दमते ! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ॥ १ ॥ स्त्री, सन्तान, क्षेत्र, धन, शरीर और गृह—ये सब अनित्य हैं, गर्भविकारके परिणामभूत इस संसारको सारहीन तथा स्वप्नवत् असत्य समझकर